अंग्रेजी बेशक हटाओ लेकिन भारतीय भाषाओं को समर्थ भी बनाओ

अंग्रेजी महारानी की कृपा देखिए कि इस देश में एक ऐसा अभिजन तैयार हुआ है जो सांस्कृतिक रुप से अनपढ़ और सृजनशीलता से दूर है.

योगेंद्र यादव

इस देश में अंग्रेजी भाषा को लेकर कोई भी बहस हो—उससे रंगभेद ही की मानसिकता झलकती है. यों जो लोग तार्किक बातें किया करते हैं वे भी इस मसले पर तर्क को उसके सिर के बल खड़ा करते नजर आते हैं. अनुभव की सारी सच्चाई पीछे रह जाती है और पूर्व-मान्यताएं आगे आकर मोर्चा संभाल लेती हैं. अपनी पूर्व-मान्यताओं की पुष्टि में मनगढ़ंत कथाएं सुनायी जाने लगती हैं और इन कथाओं के आगे ठोस सबूत हल्के पड़ जाते हैं. जीवन के हर क्षेत्र में बुनियादी बदलाव के पैरोकार अंग्रेजी का मसला आते ही धुर परंपरावादी बन जाते हैं, मानो किसी ने अंग्रेजी का चलन बदलने की बात कहकर बनी बनायी पवित्रता को दूषित कर दिया हो. आपको एहसास हो जाता है कि सत्ताधारी वर्ग और प्रभुत्वशाली विचार के खिलाफ खड़े होने पर क्या हश्र होता है.

उच्च शिक्षा में अंग्रेजी के चलन को धीरे-धीरे समाप्त करने के मसले पर जो बहस अभी चल रही है उसका रंग-ढंग भी ऐसा ही है. ऐसी संभावना का जरा सा जिक्र क्या आया कि असल खान-मार्केट गैंग यानी वामपंथी-धारा या फिर दक्षिणपंथी धारा का अंग्रेजीदां अभिजन, एकबारगी ताव खा गया लगता है. ये लोग सकते में आ गये हैं कि जो बुनियादी शिक्षा शास्त्रीय समझ पूरी दुनिया में पढ़ाई-लिखाई के मामले में सहज ही स्वीकारी जाती है, उसे भारत की देश भाषा में लागू करने पर विचार भी किया जा सकता है.

इन लोगों को त्रि-भाषा फार्मूले के जारी रहने में भारी साजिश नजर आती है जबकि त्रि-भाषा फार्मूला तो देश में शिक्षा से संबंधित हर नीतिगत दस्तावेज में किसी मानक नुस्खे की दर्ज चला आ रहा है. ये लोग हिंदी बनाम भारत की अन्य भाषाओं का विवाद खड़ा करते हैं और भ्रम का भूत गढ़कर उससे बुलवाते हैं कि जरा इस अंधेरगर्दी को देखिए तो भाई कि किस तरह लोगों पर हिंदी थोपने की कोशिश हो रही है. जैसे हमारे अंग्रेज हुक्मरानों ने फूट डालो और राज करो की कला को अच्छी तरह साध रखा था, वैसी ही कला में इन्हें भी महारत हासिल है.

ये लोग भारतीय भाषाओं में उच्च शिक्षा दिये जाने की बात को ही सिरे से नकार देते हैं. यह बिल्कुल वैसा ही है जैसे कभी पुरुषों ने स्त्रियों के मताधिकार को नकारा था कि भला ये कैसे हो सकता है. ये लोग बड़ी मासूमियत से पूछते हैं : जो व्यवस्था इतने अच्छे ढंग से

काम कर रही है उसमें ऐसी क्या बुराई आ गई? यह कुछ वैसा ही है जैसे कोई दक्षिण अफ्रीकी गोरा अंग्रेज पूछे कि जो व्यवस्था चली आ रही है आखिर उसमें खोट क्या है जो बदलने की बात हो रही है.

पहले असल सवाल को तो ठीक से पहचानिए

इस बहस के भीतर जो असल सवाल है, उसके बारे में पहले स्पष्ट हो लेना जरूरी है. यहां हम नीति-निर्माताओं की किसी गुप्त मंशा के बारे में बहस नहीं कर रहे. दरअसल, तो हम लोग यहां एक नीति के बारे में बहस कर रहे हैं. हम लोग यहां अंग्रेजी को माध्यम बनाकर होने वाली पढ़ाई को रातो-रात खत्म करने के फायदों पर बहस नहीं कर रहे. ऐसा करने से फायदा नहीं, बल्कि घाटा ही होगा. दरअसल हम लोग यहां पढ़ाई के माध्यम के रूप में अंग्रेजी को धीरे-धीरे, चरणबद्ध तरीके से हटाने की चर्चा कर रहे हैं.

शिक्षण के क्षेत्र में अभी जो तौर-तरीके चल रहे हैं, हम उनके गुणों पर बहस नहीं कर रहे हैं या फिर यहां हमारी चर्चा का विषय यह नहीं कि भारतीय भाषाओं में जो पाठ्यसामग्री अभी मौजूद है, वह गुणवत्ता के लिहाज से कितनी खरी या खोटी है. ऐसी ज्यादातर सामग्री घटिया हैं और ऐसी घटिया सामग्री में मेडिकल की पढ़ाई के लिए तैयार की गई वह पाठ्यपुस्तक भी शामिल है जो हाल मे चर्चा का विषय बनी. लेकिन, इससे यह साबित नहीं होता कि भारतीय भाषाओं में उच्च गुणवत्ता की पाठ्यपुस्तकें तैयार नहीं हो सकतीं.

दरअसल तो हमें नीतिगत प्रस्ताव के गुण-दोषों पर बहस करनी चाहिए.

यहां याद रखने की एक अहम बात यह है कि हम अंग्रेजी भाषा सीखने-जानने के बारे में बहस नहीं कर रहे हैं. जो कोई भी उच्च शिक्षा के क्षेत्र में आता है उसने अंग्रेजी भाषा का कोई न कोई इम्तहान पास किया ही होता है भले ही अंग्रेजी भाषा पर उसकी पकड़ वैसी जबर्दस्त न हो. अंग्रेजी सीखने को बेशक बढ़ावा दिया जाना चाहिए. हम यहां पढ़ाई-लिखाई की माध्यम भाषा के रूप में अंग्रेजी की हैसियत पर बात कर रहे हैं. यहां बहस का मसला यह है कि आखिर अंग्रेजी ही वह एकमात्र भाषा क्यों बनी रहे जिसके सहारे विद्यार्थियों को उनका पाठ सिखाया-बताया जाये.

जाहिर है, फिर बहस इस बात पर कत्तई नहीं कि विद्यार्थियों को अंग्रेजी भाषा में लिखी पुस्तकें मिलनी चाहिए कि नहीं. यहां हमारी बहस का मुद्दा यह भी नहीं कि अंग्रेजी को पढ़ाई-लिखाई की माध्यम भाषा के रूप में सिरे से खत्म कर दिया जाये. हमारा देश विविधताओं का देश है और ऐसे देश में हमें हर तरह के अल्पसंख्यकों का ख्याल रखना चाहिए, जिसमें अंग्रेजी भाषी अल्पसंख्यक भी शामिल हैं. दरअसल हम यहां सामान्य नियम की बात कर रहे हैं न कि अपवादों की.

असल बहस इस बात को लेकर है कि क्या अंग्रेजी ही कक्षाओं में होने वाली पढ़ाई-लिखाई और आपसी चर्चा की एकमात्र अथवा सबसे ज्यादा पसंदीदा भाषा बनी रहे, क्या छात्रों को पढ़ने के लिए उनके विषय के बारे में लिखी सिर्फ अंग्रेजी भाषा की पाठ्यसामग्री बतायी जाये और क्या अंग्रेजी ही परीक्षाओं की माध्यम भाषा बनी रहे. यह बहस प्रौद्योगिकी से जुड़ी शिक्षा के माध्यम-भाषा के बारे ज्यादा है न कि पूरी की पूरी उच्च शिक्षा के बारे में.

शिक्षा के चंद कुलीन टापुओं को छोड़ दें तो नजर आयेगा कि उच्च शिक्षा के ज्यादातर संस्थानों में पढ़ाई-लिखाई का माध्यम भारतीय भाषा ही है या फिर इन संस्थानों में भारतीय भाषाओं के जरिए पढ़ाई करने की अनुमति है. मिसाल के लिए, दिल्ली विश्वविद्यालय के बहुत से छात्र परीक्षाओं में अपना उत्तर हिन्दी में लिखते हैं. शिक्षण की अति-विशिष्ट माध्यम-भाषा के रूप में अंग्रेजी अब सिर्फ निजी विश्वविद्यालयों, कुछ केंद्रीय विश्वविद्यालयों तथा अधिकतर व्यावसायिक और तकनीकी शिक्षा की माध्यम भाषा के रूप में सीमित हो चली है. और, यही मौजूदा बहस की मुख्य बात है.

अंग्रेजी का चलन शिक्षाशास्त्रीय समझ पर आघात की तरह है

उच्च शिक्षा के माध्यम के रूप में अंग्रेजी की मानक-भाषा की हैसियत खत्म करने की पर्याप्त वजहें मौजूद हैं. उच्च शिक्षा में आने वाले ज्यादातर छात्रों की स्कूली स्तर पर पढ़ाई-लिखाई का माध्यम

कोई न कोई भारतीय भाषा ही हुआ करती है. ये छात्र स्कूलों में तो अंग्रेजी पढ़ते हैं लेकिन उनके घर या पड़ोस में अंग्रेजी का चलन नहीं होता. अंग्रेजी में ये छात्र न तो धारा प्रवाह बोल पाते हैं और न ही लिख-पढ़ सकते हैं. ऐसे में, उच्च शिक्षा के क्षेत्र में आने पर माध्यम भाषा का अंग्रेजी हो जाना शिक्षा शास्त्रीय समझ पर किसी आघात की तरह है. छात्रों का ज्यादातर समझ विषय-वस्तु को समझने पर नहीं बल्कि विषय को अंग्रेजी में लिखने-समझने और बोलने की कठिनाई से पार पाने में जाया होता है.

जाहिर सी बात है कि अगर उच्च शिक्षा की भाषा अंग्रेजी है तो फिर आप जिस बेहतरी से अंग्रेजी समझ पाते हैं उसी बेहतरी से विषय-वस्तु को भी समझ सकेंगे, अंग्रेजी लिखने में कुशल होंगे तो ही अच्छी डिग्री हासिल होगी और अगर आप धारा प्रवाह अंग्रेजी बोल पायेंगे तो ही सभा और पढ़े-लिखों के समाज में आत्म-सम्मान अर्जित कर पायेंगे. इसके जो नतीजे सामने आते हैं उसे आत्मघात की तर्ज पर शिक्षाघात कहना ही ठीक होगा: लाखों छात्र उच्च शिक्षा में असफल होते हैं या पढ़ाई छोड़ देते हैं क्योंकि शिक्षा की माध्यम भाषा अंग्रेजी बनायी गई है जो शिक्षा शास्त्रीय समझ के लिहाज से किसी बर्बरता से कम नहीं.

विभिन्न सामाजिक वर्गों पर शिक्षाघात की इस घटना का असर अलग-अलग होता है. सबसे ज्यादा चोट वंचित पृष्ठभूमि से आने वाले छात्रों पर पहुंचती है: ये छात्र आर्थिक रूप से कमजोर होते हैं

और अक्सर अपनी परिवार की तरफ से पढ़ाई-लिखाई करने वाली पहली पीढ़ी के सदस्य होते हैं. ये छात्र अक्सर दलित, आदिवासी और ओबीसी समुदाय के होते हैं जिन्हें ऐतिहासिक रूप से शिक्षा से वंचित किया गया है.

भारत में जातिगत और वर्ग से जुड़ी असमानता को बनाये रखने का ठोका-आजमाया तरीका है- अंग्रेजी के दबदबे को बनाये रखना. सबसे अहम बात यह कि अंग्रेजी सांस्कृतिक विलगाव की भी भाषा है. अंग्रेजी महारानी की कृपा कहिए कि इस देश में एक ऐसा अभिजन तैयार हुआ है जो सांस्कृतिक रूप से अनपढ़ और सृजनशीलता से दूर है. यह वर्ग अपने श्रेष्ठताबोध का इस कदर शिकार है कि अपने ही लोगों से अलग-थलग हो गया है. साथ ही, यह वर्ग पश्चिमी दुनिया के मुकाबले अपने को हीन भी समझता है सो नकलची और बनावटी है.

सार-संक्षेप के रूप में कहें तो: अंग्रेजी का प्रभुत्व शिक्षा शास्त्रीय दृष्टि से, सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से हमें बर्बादी की राह पर ले जा रहा है. अंग्रेजी के प्रभुत्व को पर्याप्त समझदारी के साथ कुछ इस तरह खत्म किया जाना चाहिए कि वह गुणवत्तापूर्ण पठन-पाठन, सर्जनात्मकता और सामाजिक समानता का साधक बन सके.

कैसे किया जाये यह काम?

यह काम आसानी से नहीं होने जा रहा. शिक्षा की माध्यम-भाषा के रूप में अंग्रेजी के दबदबे को खत्म करने का एक ही तरीका है कि भारतीय भाषाओं को उच्च शिक्षा के क्षेत्र में पढ़ाई-लिखाई की भाषा बनाने के कठिन काम के लायक बनाया जाये. इसके लिए राष्ट्रीय स्तर पर मिशन चलाने की जरूरत पड़ेगी: अच्छी गुणवत्ता की पाठ्यपुस्तकें, तकनीकी विषयों के शब्दकोश, संदर्भ सामग्रियों का अनुवाद, ई-पुस्तकालयों का समेकन व शिक्षकों के प्रशिक्षण जैसी जरूरतों को पूरा करना होगा. छात्रों का कौशल बढ़ाना होगा. अभी तो हालत यह है कि कॉलेज के ज्यादातर छात्र अपनी देसभाषा में भी अच्छी तरह लिख नहीं पाते.

इसका यह अर्थ नहीं कि अंग्रेजी से सिरे से छुट्टी ही कर ली जाये. फिलहाल, अंग्रेजी में न सिर्फ बेहतर शोध-अनुसंधान मौजूद हैं बल्कि वह अन्य भाषाओं के बीच ज्ञान के एक सेतु के रूप में भी काम कर रही है. इसलिए, सभी छात्रों के लिए अंग्रेजी पढ़ने और समझने को सुगम बनाने के लिए विशेष कक्षाएं चलाई जानी चाहिए. अंग्रेजी बोलने और अंग्रेजी लिखने के मौजूदा चलन और मोह से यह कहीं ज्यादा बेहतर है. उच्च शिक्षा बहुभाषिक होः कक्षाओं में पढ़ाई व बुनियादी स्तर की पाठ्य-सामग्री भारतीय भाषाओं में हो, विशिष्ट संदर्भ सामग्री अंग्रेजी में हो और परीक्षा किसी भी भाषा में देने की अनुमति रहे.

मैं यहां जब 'भारतीय भाषा' शब्द का प्रयोग कर रहा हूं तो इससे मेरा आशय आधुनिक, मानकीकृत भारतीय भाषाओं (कन्नड़, बंगाली, मराठी, हिन्दी आदि) से है यानी बहुत बड़ी आबादी की वे भाषाएं जिनमें पढ़ाई लिखाई का बुनियादी ढांचा, पुस्तकालय और अखबार उपलब्ध हैं और वैसे विश्वविद्यालय भी मौजूद हैं जिनके सहारे यह सारी व्यवस्था चला करती है. प्राथमिक स्तर की शिक्षा इन अधिसूचित भाषाओं से जुड़ी छोटी भाषाओं में दी जानी चाहिए यानी ऐसी भाषाओं में जिन्हें हम `बोली` कहते हैं (जैसे, तुलू, कामतापुरी, कोंकणी, भीली, भोजपुरी आदि). ऐसी भाषाओं में उच्च शिक्षा की सामग्री तैयार करने में लंबा वक्त लग सकता है.

ऐसे बदलाव के लिए सबसे बड़ा प्रयास शिक्षा-जगत में नहीं बल्कि रोजगार के बाजार में करने की जरूरत है. ऐसा कत्तई नहीं कि लोग-बाग अंग्रेजी को बोध-क्षमता की बेहतर भाषा मानकर उसके पीछे पागल बनकर लगे हुए हैं. आज हर कोई अंग्रेजी लिखना-बोलना चाहता है तो इसलिए कि ऐसा करना मोटी तनख्वाह वाली नौकरी और सामाजिक सम्मान पाने की गारंटी है. सोचकर देखिए कि अगर बात ऐसी है तो इसमें क्या कुछ ऐसा है जिसे हम आंतरिक रूप से अच्छाई, स्वाभाविकता या फिर अनिवार्यता का नाम दें.

चंद अपवादों को छोड़ दें तो रोजगार के बाजार में ज्यादातर मामलों में यही नजर आयेगा कि अंग्रेजी भाषा बोलने वालों को बेकार ही

तरजीह दी जा रही है क्योंकि उनके काम-काज से अंग्रेजी का कोई अंदरूनी और अनिवार्य रिश्ता नहीं. जिन मामलों में लगे कि धारा प्रवाह अंग्रेजी का बोलना-लिखना जरूरी है वहां पूरक प्रशिक्षण देकर काम चलाया जा सकता है. हर साल चंद हजार नौकरियों के लिए करोड़ों छात्रों को अंग्रेजी के नाम पर मानसिक रूप से प्रताड़ित करना ठीक बात नहीं. इस सिलसिले की एक अहम बात यह कि रोजगार का बाजार भी अपने को गढ़ता-बदलता है, वह देखते रहता है कि जो लोग ताकतवर हैं उनकी तरह से किस तरह के सामाजिक-सांस्कृतिक संकेत दिये जा रहे हैं.

रोजगार के बाजार से जब तक यह भाषाई रंगभेद का बर्ताव खत्म नहीं हो जाता तब तक जन-साधारण को अंग्रेजी से दूर रखना उन पर जोर-जुलुम करने जैसा है. भाषाई रंगभेद के जारी रहते जन-साधारण को अंग्रेजी से दूर रखने का मतलब होगा उनके प्रति पहले से चले आ रहे बर्ताव को और ज्यादा बढ़ावा देना. जब तक अंग्रेजी अच्छी नौकरी, कद और पद-प्रतिष्ठा की गारंटी बनी रहेगी तब तक हर किसी के लिए अंग्रेजी भाषा की शिक्षा के दरवाजे समान रूप से खुले रहने चाहिए. लेकिन, ऐसी स्थिति में भी हमारे लिए बेहतर गुणवत्ता की अंग्रेजी भाषा की शिक्षा जरूरी है न कि अंग्रेजी को माध्यम बनाकर दी जाने वाली शिक्षा.

आज के भारत में अंग्रेजी का सवाल कोई भाषाई सवाल नहीं है. यह एक राजनीतिक सवाल है कि: देश पर शासन किसका है? और,

किन अर्थों में है? आशीष नंदी ने हमें याद दिलाया है कि उपनिवेशवाद के दायरे में `आत्म की हानि और उसकी पुनर्प्राप्ति`हमारा प्रधान सांस्कृतिक संकट है. हम जब तक ये नहीं समझ लेते कि जीभ ऐंठकर और होठ दाबकर बोली जाने वाली अंग्रेजी यानी 'क्वीन्स इंग्लिश' हमारी भारतीय आधुनिकता का मुख्य वाहक भाषा नहीं हो सकती तब तक हम न तो अंग्रेजी के साथ सहजता का नाता बना सकते हैं और न ही अंग्रेजी को उसकी सही जगह ही दिखा सकते हैं.